॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ बृहस्पति स्मृतिः॥

श्री प्रभु के चरणकमलों में समर्पित:

श्री मनीष त्यागी
संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥अथ बृहस्पतिस्मृतिः॥

अथ बृहस्पतिस्मृतिमारंभः

इष्ट्वा ऋतुशतं राजा समाप्त वरंदक्षिणम् ॥
भगवंतं गुरु श्रेष्ठं पर्यपृच्छबृहस्पतिम् ॥१॥

देवराज इन्द्र ने जिनकी श्रेष्ठ दक्षिणा हुई है ऐसे सौ यज्ञों को समाप्त करके भगवान् उत्तम गुरु वृहस्पति जी से पूछा ॥ १ ॥

भगवन्केन दानेन सर्वतः सुखमेवते ॥
यदक्षयं महार्थं च तन्मे ब्रूहि महत्तम ॥२॥

कि हे भगवन्! किस वस्तु के दान करने से सर्वदा सुखकी वृद्धि होती है और जिस वस्तु के दानका अक्षय और महान् फल है उस दान को भी हे तपोधन! मुझसे कहिए ॥२॥

एवामद्रेण पृष्टोऽसौ दैवदेवपुरोहितः ।
वाचस्पतिर्महामाज्ञो वृहस्पतिरुवाच ह ॥३॥

इन्द्र से इस प्रकार पूछे जाने पर देवराज पुरोहित पंडित श्रेष्ठ, वाणी के पति बृहस्पति बोले कि ॥३॥

सुवर्णदानं भूदानं गोदानं चैव वासव ॥
एतत्प्रयच्छमानस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥

हे इन्द्र ! सुवर्णदान, गोदान और पृथ्वीदान का करनेवाला मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥४॥

सुवर्ण रजतं वस्त्र मणि रत्नं च वासव ॥
सर्वमेव भवेदत्तं वसुधा या प्रयच्छति ॥ ५॥

हे इन्द्र ! जिस मनुष्य ने पृथ्वी का दान किया है मानों उसने सुवर्ण, चांदी, वस्त्र, मणि, रत्न इन सबका दान कर लिया ॥५॥

फालकृष्टां महीं दत्वा सवीनां सस्यमालिनीम्॥
यावत्सूर्यता लोकास्तावत्स्वर्गे महीयते ॥६॥

हल से जुती बीजयुक्त और जिसमें खेत शोभायमान हो ऐसी पृथ्वीके दान करनेवाला मनुष्य जब तक सूर्य का प्रकाश त्रिलोकी में रहेगा तब तक वह स्वर्ग में निवास करैगा ॥६॥

यत्किंचित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्शितः॥
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ॥७॥

जो मनुष्य आजीविका से दुःखी होकर कोईसा पाप करता है वह गोचर्मकी बरावर पृथ्वी दान करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥७॥

दशहस्तेन दंडेन त्रिंशद्दंडा निवर्तनम् ॥

दश तान्येव विस्तारो गोचमैतन्महाफलम् ॥८॥

दश हाथ के दंड से तीस दंड भर लंबी और चौडी पृथ्वी को गोचर्म कहा है, यह महान् फल की देनेवाली होती है ॥८॥

सवृषं गोसहस्रं तु यत्र तिष्ठत्यतंद्रितम् ॥
बालवत्साप्रसूतानां ततोचर्म इति स्मृतम् ॥ ९॥

जहां हजार गौ और बैल आनंदसहित स्थित हों उन गौओं में जो प्रसूता हो उसके बछिया बछडे भी ठहरें, उसे गोचर्म कहते हैं ॥९॥

विप्राय दद्याच्च गुणान्विताय तपोनियुक्ताय जितेंदियाय ॥
यावन्मही तिष्ठति सागरांता तावत्फलं तस्य भवेदनंतम् ॥१०॥

जो इस पृथ्वी को गुणवान, तपस्वी, जितेन्द्रिय, ऐसे ब्राह्मण को दान करता है, उस पुरुष पर यह ससागरा पृथ्वी जब तक स्थित रहेगी ऐसे ब्राह्मण को दान का अनंत फल तब तक भोग करना होगा ॥१०॥

यथा बीजानि रोहंति प्रकीर्णनि महीतले ।
एवं कामाः प्ररोहंति भूमिदानसमर्जिताः ॥११॥

पृथ्वी के तल पर बोए हुए बीज जिस भांति जम आते हैं; उसी प्रकार पृथ्वी दान के द्वारा संचय किए हुए सम्पूर्ण काम जमते हैं ॥११॥

यथाप्सु पतितः शक तैलर्विदुः प्रसर्पति ।
एवं भूम्याः कृतं दानं सस्ये सस्ये प्ररोहति ॥१२॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार जल में पड़ते ही तेल की बूंद उसी समय फैल जाती है, उसी प्रकार भूमि दान खेत खेत में जम जाता है ॥१२॥

अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदश्चैव रूपवान् ॥
स नरः सर्वदो भूप यो ददाति वसुंधराम् ॥१३॥

अन्नका दान करनेवाला मनुष्य सर्वदा सुखी रहताहै, वक्ष का दान करनेवाला रूपवान होता है और जो मनुष्यं पृथ्वी दान करता है वह सर्वदा राजा होता है ॥१३॥

यथा गौर्भरते वत्सं क्षीरपुत्सृज्य क्षारिणी ॥
स्वयं दत्ता सहस्राक्ष भूमिभरति भूमिदम् ॥१४॥

जिस भांति दूधवाली गौ दूध को छोडकर बच्चे का पालन करती है उसी प्रकार से हे इन्द्र ! अपने हाथ से दी हुई पृथ्वी भी अपने दाता को पुष्ट करती है ॥१४॥

शंख भद्रासनं छत्रं चरस्थावरवारणाः ॥
भूमिदानस्य पुण्यानि फलं स्वर्गः पुरंदर ॥१५॥

हे इन्द्र ! पृथ्वी दान करनेवाले को शंख, भद्रासन, (राजगद्दी) छत्र, चमर, श्रेष्ठहा थी यह पृथ्वीदान के पुण्य से प्राप्त होते हैं और फल स्वर्ग है ॥१५॥

आदित्यो वरुणो बनिर्बह्मा सोमो हुताशनः ।
शूलपाणिश्च भगवानभिनंदति भूमिदम् ॥१६॥

सूर्य, वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, होम की अग्नि, शिव और विष्णु यह पृथ्वी के देनेवाले की प्रशंसा करते हैं ॥१६॥

आस्फोटयंति पितरः प्रवल्गति पितामहाः ॥
भूमिदाता कुले जातः स च त्राता भविष्यांते ॥ १७॥

पितर अपने हाथों से अपनी भुजाओं को मल्लों के समान बजाते हैं और पितामह भली भांति आनंदित होकर कहते हैं कि हमारे कुल में पृथ्वी का दान देनेवाला उत्पन्न हुआ है वही हमारी रक्षा करनेवाला होगा ॥१७॥

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ॥
तारयंतीह दातारं जपवापनदोहनैः ॥१८॥

'गोदान, भूमिदान और विद्यादान इन तीन दानों को ही श्रेष्ट कहा है, यह तीनो दान दाता को क्रमानुसार दुहना, बोना, और जप करना, इनमें तार देते हैं ॥१८॥

प्रास्ता वस्त्रदा यांति नग्ना यांति ववस्त्रदाः।
तृप्ता यांत्यन्नदातारः क्षुधिता यांत्यनन्नदाः ॥१९॥

वस्त्र का दाता वस्त्रों से आच्छादित होकर परलोक में जाताहै, जिसने वस्त्रदान नहीं किए वह मनुष्य नग्न रहता है; अन्न का देनेवाला तृप्त होताहै; और जिसने अन्नदान नहीं किया वह क्षुधित होकर जाता है ॥१९॥

कांक्षति पितरः सर्व नरकान्द्भयभीरवः ॥

गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्राता भविष्यति ॥२०॥

नरकसे भयभीत हुए पितर सर्वदा यह अभिलाषा करते रहते हैं कि जो पुत्र गया में जाएगा; वही हमारी रक्षा करनेवाला होगा ॥२०॥

एष्टव्या बहवः पुत्रा योकोऽपि गयो ब्रजेत् ॥
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥२१॥

बहुत से पुत्रों की इच्छा करनी चाहिए क्योंकि उनमें से एक तो अवश्य गया क्षेत्र जाकर एक अश्वमेध यज्ञ को करेगा अथवा नीले बैल से वृषोत्सर्ग करेगा ॥२१॥

लोहिता यस्तु वर्णन पुच्छाग्रे यस्तु पांडुरः ॥
श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥२२॥

जिसका रंग लाल वर्ण का हो, और पूंछ का अग्रभाग पीला हो, दोनों सींग सफेद हो उसे नील बैल कहतेहैं ॥२२॥

नील: पांडुरलांगूलस्तृणमुद्धरते तु यः॥
पष्टिवर्षसहसा णि पितरस्तेन तर्पिताः ॥२३॥

जिसका रंग नीला हो, पूंछ पीली हो, और जो तृणों को उखाड ले बैल के दान करनेसे पितर साठ हजार वर्ष तक तृप्त होते हैं ॥२३॥

यस्य भृगगतं पंक कलात्तिष्ठति बोद्धृतम् ॥
पितरस्तस्य चाश्नंती सोमलोकं महाद्युतिम् ॥२४॥

जिस बैल के सींग पर नदीकूल से उखाडा हुआ पंक (कीचड) स्थित रहे ऐसे बैल के दान करनेवाले के पितर' प्रकाशमान चन्द्रमा के लोक को भोगते हैं ॥२४॥

पृयोर्यदादिलीपस्य नृगस्य नहुपस्य च ॥
अन्येषां च नरेंद्राणां पुनरन्यो भविष्यति ॥२५॥

पृथु, यदु, दिलीप, नग, नहुष, और अन्यान्य राजाओ में फिरकर मरनेके उपरान्त अन्य ही राजा होताहै ॥२५॥

बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः ॥
यस्य यस्य यथा भूमिस्तस्य तस्य तथा फलम् ॥२६॥

बहुतसे सगर आदि राजाओं ने पृथ्वी को मोगा, जिसकी जैसी पृथ्त्री हुई उस पर वैसा ही फल हुआ ॥२६॥

यस्तु ब्रह्मनः स्त्रीवो वा यस्तु वै पितृघातकः ॥
गवां शतसहस्राणां हंता भवति दुष्कृती ॥२७॥

जो मनुष्य ब्रह्महत्या करनेवाला और स्त्री की हत्या करनेवाला है, वह पापी लाख गौओं को मारनेवाला होता है ॥२७॥

स्वदतां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधराम् ॥
श्वविष्टायां कृमिभूर्त्वा पितृभिः सहः पच्यते ॥२८॥

जो मनुष्य अपनी दी हुई, अथवा दूसरेकी दी हुई पृथ्वी को छीन लेता है, वह कुत्ते की विष्ठा में कीडा होकर अपने पितरों सहित पकाया जाता है ॥२८॥

आक्षेप्ता चानुमंता च तमेव नरकं व्रजेत् ॥
भूमिदो भूमिहर्ता तो च नापरं पुण्यपापयोः ॥
ऊर्च त्राधोऽवतिष्ठत यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २९ ॥

मारनेवाला और अनुमति देने वाला यह दोनों एक ही नरक में जाते हैं; पृथ्वी का दाता और पृथ्वी को हरनेवाला अपने अपने पुण्य अथवा पाप से क्रमानुसार स्वर्ग और नरक में प्रलयपर्वन्त स्थित होते हैं ॥२९॥

अग्नेपत्यं प्रथम सुवर्ण भूवैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः।
लोकात्रयस्तेन भवंति दत्ता यः कांचनं गां च महीं च दद्यात् ॥३०॥

अग्नि का प्रथम पुत्र सुवर्ण है, पृथ्वी विष्णु की पुत्री है और गौ सूर्य की पुत्री है, जो मनुष्य सुवर्ण, गौ, मही इन का दान करताहै उसने मानों तीनों लोक दान कर लिये ॥३०॥

षडशीतिसहस्राणां योजनानां वसुंधरा ॥
स्वयं दत्ता तु सर्वत्र सर्वकामप्रदायिनी ॥३१॥

जिस मनुष्यने छयासी (८६) हजार योजन पृथ्वी स्वयं दान की है वह पृथ्वी उसके सब मनोरथ पूर्ण करती है ॥३१॥

भूमि यः प्रतिगृह्णाति भूमि यश्च प्रयच्छति ॥

उभौ तौ पुण्यकाणी नियत स्वर्गगामिनी ॥ ३२॥

जो पृथ्वी का दान लेता है, और जो पृथ्वी को देताहै वह दोनों पुण्यात्मा निरन्तर स्वर्ग मे जाते हैं ॥३२॥

सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ॥
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥३३॥

एक ही जन्म में सम्पूर्ण दानो का फल मिलता है और सात जन्म तक सुवर्ण, पृथ्वी, गौरी इनका फल मिलता है ॥३३॥

यो न हिंस्यादहं ह्यात्मा भतग्रामं चतुर्विधम् ॥
तस्य देहादियुक्तस्य भयं नास्ति कदाचन ॥३४॥

जो मनुष्य "मैं सबका आत्मा हूं" यह जानकर, अंडज, स्वेदज, उद्विज्ज, जरायुज, इन चार प्रकार के भूतोंको दुःख नहीं देता उस जीवात्मा को देह से पृथक् होने पर भी कभी भय नहीं होता ॥३४॥

अन्यायेन हृता भूमियनरैरपहारिता ।
हरंतो हारयंतश्च हन्युरासप्तमें कुलम् ॥३५॥

जिन मनुष्यों ने अन्याय करके पृथ्वी छीन ली है, अथवा भूमि के छीनने की जिसने अनुमति, दी है वह छीननेवालें और अनुमति देनेवाले दोनों ही अपने सात कुलों को नष्ट करते हैं ॥३५॥

हरते हारयेद्यस्तु मंदबुद्धिस्तमोहतः ॥
स बद्धो वारुणैः पाशैस्तिर्यग्योनिषु जायते ॥२६॥

जो दुर्बुद्धि मनुष्य भूमि को छीनता है अथवा छिनवता है वह वरुण फाँस में बंधकर तिर्यगयोनि में उत्पन्न होता है ॥३६॥

असुभिः पतितैस्तेषां दानानामवकीर्तनम् ॥
ब्राह्मणस्य हृते क्षेत्रे हंति त्रिपुरुवं कुलम् ॥३७॥

क्योंकि उनके आँसू गिरने से समस्त दान भी नष्ट हो जाते हैं। ब्राह्मण के खेत को हरण करने वाले मनुष्य की तीन पीढी नष्ट हो जाती हैं ॥३७॥

वापीकूपसहस्त्रेण अश्वमेध घशतेन च ॥
गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्ध्यति ॥३८॥

पृथ्वी को हरनेवाला हजार बावडी और कुओं को बनाकर, सौ अश्वमेघ यज्ञ करके एक करोह गौ के दान करने से भी शुद्ध नहीं होता ॥३८॥

गामेकां स्वर्णमेकं वा भूमेप्यद्धनंगुलम्॥
हरन्नरकमायाति यावदाभूतसंप्लवम् ॥३९॥

एक गौ, एक अशर्फी और अर्द्ध अंगुल पृथ्वी इनका हरने वाला मनुष्य प्रलय तक नरकमें जाता है ॥३९॥

हुतं दत्तं तपोधीतं यत्किंचिद्धर्मसंचितम् ॥
अर्धागुलस्य सीमायां हरणेन प्रणश्यति ॥४०॥

हवन, दान, तपस्या, पढना, और धर्म से इकट्ठा किया हुआ वह सभी आध अंगुल की सीमा हरने से नष्ट हो जाता है ॥४०॥

गोवीथीं ग्रामरथ्यां च श्मशानं गोपितं तथा॥
संपीडय नरकं याति यावदाभूत संप्लवम् ॥४१॥

गौओं का मार्ग, ग्राम की गली, शमशान और गुप्त रखा हुआ, इनके तोडने से मनुष्य प्रलय तक नरक में जाता है ॥४१॥

ऊपर निर्जले स्थान प्रास्तं सस्य विवर्जयेत् ॥
जलाधारस्य कर्तव्यो व्यासस्य वचनं यथा ॥१२॥

ऊपर और जलहीन पृथ्वी में खेत को नहीं बोना चाहिए, और जलवाली पृथ्वी में व्यासजी के वचन - अनुसार खेत करना उचित है ॥४२॥

पंच कन्यानृतं हंति दश हति गवामृतम् ॥
शतमथानृतं हति सहस्त्रं पुरुषांन तम् ॥४३॥

कन्या के सम्बन्ध में झूठ बोलने से पांचको, गो के सम्बन्ध में झूठ बोलने से दश को, घोडे के, निमित्त झूठ बोलने से सौ को और पुर के निमित्त झूठ बोलने में हजार को मारने वाला होता है ॥४३॥

हंति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेनृतं बदन्।
सर्व भूम्पनृतं हति भास्म भूम्यनृतं वदी: ॥४४॥

सुवर्ण के सम्बन्ध जो झूठ बोलता है, उसके कुल में जो उत्पन्न हैं और जो उत्पन्न होगा वह उन सबको नष्ट कर देगा; और पृथ्वीके निमित्त झूठ बोलने में सबको मारता है, अतएव पृथ्वी के विषय में झूठ बोलना उचित नहीं है ॥४४॥

ब्रह्मस्वे न रतिं कुर्यात्प्राणै: कंठगतैरपि ॥
अनौषधभैष्यजयं विषमेतद्धलाहलम् ॥ ४५ ॥

चाहें प्राण भी कंठ तक आ जाए परन्तु ब्राह्मण के धन की इच्छा कभी नहीं करनी चाहिए, ब्राह्मण का धन हलाहल विषकी समान है; इसकी न तो चिकित्सा है और न ही औषधि ही है ॥४५॥

न विषं विषमित्याहुर्ब्रहस्वं विषमुच्यते ॥
विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ॥४६॥

बुद्धिमानों का कथन है कि विष विष नहीं हैं परन्तु ब्राह्मण का धन ही विष है क्योंकि विष को खाकर तो एक ही मनुष्य मरताहै परन्तु ब्राह्मण के धन को खाकर बेटे पोते तक मृतक हो जाते हैं ॥ ४६॥

लोहचूर्णश्मचूर्ण च विषं च जरयेन्नरः ॥
ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु क: पुमाञ्जरयिष्यति ॥४७॥

लोहे का चूर्ण, पत्थर का चूर्ण और विष कदाचित इनको तो मनुष्य एक वार पचा भी सकता है परन्तु त्रिलोकी के बीच में ऐसा कोई पुरुष भी सामर्थ्य वाला नहीं जोकि ब्राह्मण के धन को पचा सकें ॥४७॥

मन्युपहरणा विप्रा राजानः शत्रपाणयः ॥

शास्त्रमेंमकिनं हंति ब्रह्ममन्युः कुलत्रयम् ॥४८॥

ब्राह्मणों का क्रोध अस्त्र है, राजाओं के शस्त्र खड्ग इत्यादि हैं, इन दोनोंमें खड्ग तो एकही मनुष्य को मारता है परन्तु ब्राह्मणका क्रोध तीनों कुलों को नष्ट कर देता है ॥४८॥

अन्युमप्रहरणा विप्राश्चकप्रहरणो हरिः ॥
चक्रातीव्रतरो मन्पुस्तस्माद्विप्र न कोषयेत् ॥४९॥

क्रोध ब्राह्मणों का प्रहरण है, चक्र विष्णु का प्रहरण है, चक्र से क्रोध बड़ा तीक्ष्ण है; इस कारण ब्राह्मण को क्रोध नहीं उत्पन्न करावना चाहिए ॥४९॥

अग्निदग्धाः प्ररोहंति सूर्यग्धास्तथैव च ॥
मन्युदग्धस्य विप्राणामंकुरो न प्ररोहति ॥५०॥

वृक्षादि कदाचित् अग्नि से दग्ध होकर या सूर्य की किरणों से भस्म होकर जम आते हैं, परन्तु ब्राह्मणों के क्रोध से दुग्ध हुए मनुष्यों का अंकुर तक भी नहीं जमता ॥५०॥

तेजसाग्निश्च दहति सूर्यो दहति रश्मिना ।
राजा दहति दंडेन विप्रो दहति भन्युना ॥५१॥

अग्नि अपने तेज से दग्ध करते हैं, और सूर्य भगवान् अपनी किरणों के द्वारा दग्ध करते हैं; राजा दंड से दग्ध करते हैं और ब्राह्मण केवल अपनी आँखों कोर के द्वारा ही दग्ध करते हैं। ॥५१॥

ब्रह्मस्वेन तु यत्सौख्यं देवस्वेन तु या रतिः ॥
तद्धनं कुलनाशाय भवत्यात्मवि नाशनम् ॥५२॥

ब्राहाण के धन से जो सुख होता है; और देवता के धन से जो रति होती है, वह धन कुल और आत्मा को नष्ट कर देता है ॥५२॥

ब्रह्मस्वं बह्महत्या च दरिद्रस्य च यद्धनम् ॥
गुरुमित्रहिरण्यं च स्वर्गस्यमपि पीडयेत् ॥५३॥

ब्राह्मण का धन हरण करने से ब्रह्म हत्या लगती है, दरिद्र और गुरु का धन हरण करनेसे , मित्र का धन हरण करने से और सुवर्ण के चुराने से स्वर्ग में वास करने वाला भी दुःख भोगता है ॥५३॥

ब्रह्मस्वेन तु यच्छिद्रं तच्छिद्रं न प्ररोहति ॥
प्रच्छादयति तच्छिद्रमप्यत्र तु विसर्पति ॥५४॥

ब्राहाण के धन हरण करने में जो दोष है, वह किसी प्रकार से नहीं मिटता; उसको जो किसी भांति छिपा भी लिया जाए तो भी वह प्रगट हो जाताहै ॥५४॥

ब्रह्मस्वेन तु पुष्टानि साधनानि बलानि च ॥
संग्रामे तानि लीयंते सिकतासु यथोदकम ॥५५॥

ब्राह्मण के धन से पुष्ट हुए साधन और सेना यह संग्राम में इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार रेत में जल लीन हो जाता है ॥५५॥

श्रोत्रियाय कुलीनाय दरिद्राय च वासव ॥

संतुष्टाय विनीताय सर्वभूतहिताय च ॥५६॥

हे इन्द्र ! कुलवान् और दरिद्री वेदपाठी ब्राह्मण को तथा संतोषी, विनयी, सम्पूर्ण प्राणियों का हितकारी भी हो ॥५६॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिद्रियाणां च संयमः ॥
ईदर्शाय सुरश्रेष्ठ यदत्तं हि तदक्षयम् ॥५७॥

जो वेद का अभ्यास करनेवाला हो; तपस्या करता हो; और जिसने इन्द्रियों को रोक लिया है हे सुरश्रेष्ठ! ऐसे मनुष्य को जो कुछ दान किया जायगा वह अक्षय होगा ॥५७॥

आमपात्रं यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥
विनश्येत्पात्रदौर्बल्यातच्च पात्रं विनश्यति ॥५८॥

जिस भांति कच्चे पात्र में रक्खा हुआ दूध, दही, घी, सहत यह पात्र की दुर्बलता के कारण नष्ट हो जाते हैं और वह पात्र भी नष्ट हो जाता है ॥५८॥

एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमन्नं महीं तिलान् ॥
अविद्वान्मप्रतिगृह्णाति भस्मीभवति काष्ठवत ॥५९॥

उसी भांति गौ, सुवर्ण, वस्त्र, पृथ्वी तिल, इनको जो मूर्ख लेता है; वह काष्ठ के समान भस्म हो जाता है ॥५९॥

यस्य चैव गृहे मूखों दूरे चापि बहुश्रुतः
बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥६०॥

जिस मनुष्य के घर में मूर्ख निवास करता है और दूर पर विद्वान का निवास है, तो पंडित मनुष्य को दान देने के अर्थ मूर्ख के उलंघन करने में दोष नहीं होता, अर्थात् वह मूर्ख को दान न देकर पंडित को ही दान दे ॥६०॥

कलं तारयते धीरः सप्तसप्त च वासव ॥६१॥

हे इन्द्र! वह पंडितको देकर अपने इकोस कुलों का उद्धार करता है ॥६१॥

यस्तडागं नवं कुर्यात्पुराणं वापि खानयेत ॥
स सर्व कुलमुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते ॥६२॥

जो मनुष्य नए तालाब को बनाता है या प्राचीन को खुदवाता है वह मनुष्य सम्पूर्ण कुलों का उद्धार कर स्वर्ग लोक में पूजित होता है ॥६२॥

वापीकूपतंडागानि उद्यानोपवनानि च ॥
पुनः संस्कारकर्ता च लभते मौक्तिकं फलम् ॥६३॥

बावडी, कूप, वडाग, वाग, और उपवन इनको जो मनुष्य फिर से बनवाताहै, उस मनुष्य को नये बनवाने का फल मिलता है ॥६३॥

निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव ॥
स दुर्गविषमं कृत्संन कदाचिदवाप्नुयात् ॥६४॥

हे इन्द्र ! जिसके यहां ग्रीष्म काल में भी जल रहता है वह मनुष्य किसी दुःखजनक दुरावस्था को नहीं भोगता ॥६४॥

एकाहं तु स्थितं तोयं पृथिव्यां राजसत्तम ॥
कुलानि तारये तस्य सप्त सप्त पराण्यपि ॥६५॥

हे राजसत्तम ! जिसकी खोदी हुई पृथ्वी में एक दिन भी जल स्थित रहताहै वह जल उसके अगले मी सात कुलों को तारताहै ॥६५॥

दीपालोकप्रदानेन वपुष्मान्स-भवेन्नरः॥
प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृति मेधां च विंदति ॥६६॥

दीपक के दान करनेपर मनुष्य का शरीर उत्तम होताहै और जलके दान करनेसे स्मरण - और बुद्धिमान होता है ॥६६॥

कृत्वापि पापकर्माणि यो दद्यादन्नमर्थिने ॥
ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन लिप्यते ॥६७॥

बहुत से निंदित कर्म के करने पर भी यदि मनुष्य भिक्षुक को और विशेष करके ब्राह्मण को अन्न दान करताहै, वह मनुष्य पाप से लिप्त नहीं होता ॥६७॥

भूमिर्गावस्तथा दाराः प्रसह्य हियते यदा ।
न चावेदयते यस्तु तमाहुर्बह्मवातकम् ॥६८॥

जिस मनुष्य ने बल करके पृथ्वी, गौ और स्त्री इनका हरण किया है बहु ब्रह्म हत्यारा कहलाता है ॥६८॥

निवेदितश्च राजा वै ब्राह्मणैर्मन्युदीपितैः॥

न निवारयते यस्तु तमाहुब्रह्मघातकम् ॥६९॥

क्रोध से दीपित हुए ब्राह्मणों की प्रार्थनासे जो राजा उस हरनेवाले को निषेध नहीं करता उस राजा को ब्रह्मघाती कहते हैं ॥६९॥

उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव ॥
मोहाच्चरति विघ्नं यः स मृतो जायते कृमिः ॥७०॥

हे इन्द्र ! जो मनुष्य उपस्थित हुए, विवाह, यज्ञ, इनमें मोहवश हो विघ्न करता है वह मरने के उपरान्त कीडे की योनि में जन्म लेता है ॥७०॥

धनं फलति दानेन जीवितं जीवरक्षणात् ॥
रूपमारोग्यमैश्वर्यमहिंसाफलमश्नुते ॥७१॥

दान द्वारा धन सफल होता है, जीव की रक्षा करने से आयु की वृद्धि होती है, जो मनुष्य हिंसा नहीं करता वह ऐश्वर्य और आरोग्य रूप अहिंसा के फल को भोगता है ॥७१॥

फलमूलाशनात्पूजा स्वर्गस्सत्येन लभ्यते॥
प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वे च सुखमश्नुते ॥७२॥

नियमी होकर जो मनुष्य फल मूल का भोजन करता है वह निश्चय ही स्वर्ग को प्राप्त होता है और मरनेके निमित्त तीर्थआदि पर बैठने से राज्य और सम्पूर्ण सुखों को भोगताहै ॥७२॥

गवाढयः शक दीक्षायाः स्वर्गगामी तृणाशनः ॥
स्त्रियस्त्रिषवणस्नायी वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ॥७३॥

हे इन्द्र ! जो मनुष्य मन्त्र का उपदेश लेता है वह गौओं से युक्त होता है; और जो मनुष्य तृणों को खाताहै वह स्वर्ग जाता है, तीन काल में स्नान करने वाला अनेकों स्त्री वाला होता है और वायु को पीने वाला यज्ञ के फल को पाता है ॥७३॥

नित्यस्नायी भवेदर्कः संध्ये द्वे च जपन्द्विजः॥
नवं साधयते राज्यं नाकपृष्ठमनाशकम् ॥७६॥

जो मनुष्य नित्य स्नान करता है, और जो दोनों संध्याओं में जप करता है, वह सूर्यरूप होता है, और अनशन व्रत करता है उसे नवीन राज्य और सर्वदा स्वर्ग में निवास प्राप्त होताहै ॥७४॥

अग्निप्रवेशे नियतं ब्रह्मलोके महीयने॥
रसनाप्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्च विंदति ॥७५॥

अग्नि में प्रवेश करनेवाला ब्रह्मलोक में पूजित होता है और जो अपनी जिह्वा को वश में रखता है वह पशु और पुत्रों को प्राप्त होता है ॥७५॥

नाके चिरं स वंसते उपवासी च यो भवेत् ॥
सततं चैकशायी यः स लभेदीप्सितां गतिम् ॥७६॥

जो मनुष्य, नियमपूर्वक उपवास करता है वह बहुत काल तक स्वर्ग में निवास करता है; और जो मनुष्य निरन्तर एक ही शय्या पर शयन करता है; उसको अभिलषित गति प्राप्त होती है ॥७६॥

वीरासनं वीरशय्यां वीरस्यानिमुपाश्रितः ॥

अक्षय्यास्तस्य लोकाः स्युस्सर्वकामार्गमास्तथा ॥७७॥

जो मनुष्य वीरासन, वीरशय्या, और वीरस्थान में स्थित रहता है, उसके सब लोक और सम्पूर्ण काम अक्षय हो जाते हैं ॥७७॥

उपवासं च दीक्षां च अभिषकं च वासव ॥
कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥७८॥

हे वासव ! जो मनुष्य बारह वर्ष तक उपवास, दीक्षा, और अभिषेक इनको करता है वह स्वर्ग में उत्तम होता है ॥७८॥

अधीत्य सर्ववेदान्वै सद्यो दुःखात्प्रमुच्यते ॥
पावनं चरते धर्म स्वर्गलोके महीयते ॥७९॥

सम्पूर्ण वेदों का पढने वाला शीघ्र ही दुःखों से छूट जाता है, और पवित्र धर्म का करनेवाला स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥७९॥

बृहस्पतिमतं पुण्यं ये पठति द्विजातयः ॥
चत्वारि तेषां वर्द्धते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥८०॥

जो द्विज बृहस्पत्ति के पवित्र मत को पढते हैं, उनकी आयु, विद्या, यश, पल इन चारों की वृद्धि होती है ॥८०॥

इति श्रीबृहस्पतिप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥

श्री बृहस्पति प्रणीत धर्मशास्त्र समाप्त ॥